विजय-ध्वनि

[४७ राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह]

प्रकाशक :

विद्या मन्दिर लिमिटेड
१२/९०, कनॉट सरकस,
नई दिल्ली-१

मुद्रक :

गौंडल्स प्रेस, १२/९० कनॉट सरकस, नई दि

प्रथम संस्करण : जून १९६४

द्वितीय संस्करण : अप्रैल १९६९

निवेदन

कैलाश और कामख्यापीठ हिमालय सौन्दर्य, शालीनता, सौकुमार्य का ही केन्द्र नही, मानवीय ज्ञान-विज्ञान की तत्वभूमि भी है। अजेय हिमालय भारत का रक्षक एवम् प्रहरी ही नही, प्रत्युत वह हमारे समस्त राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित करने वाली भारतीय संस्कृति का अजस्त्र प्रेरणा-स्त्रोत है। आज उसी भारत की अमर आत्मा पर, 'हिमालय सुतानाथ पूजिते परमेश्वरी' की वाणी पर, गंगा-यमुना और ब्रह्मपुत्रा के उत्स पर विधर्मियों का आक्रमण हुआ है। यदि हम भारतवासी ऋग्वेद के उस आदि स्थान हिमालय को, जहां सर्व प्रथम ऊषा-स्तुति के द्वारा अंधकार का निरावरण—

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरुषा ऽऽयाति सुयुजा रथेन ।

के द्वारा किया था, जहां हमें केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या अपेशसे सुमुषद्भिर जायथम' मन्त्र द्वारा ऋषि ने अभिषिक्त कर जड़ में ज्ञान का और रूप में सौन्दर्य का वितरण करते हुए ऊषा के साथ उत्पन्न हो कहा था, अचल नही रख सके तो भारतीय साहित्य और संस्कृति की विलास-स्थली का क्या होगा, कहना मुश्किल है।

जब हिमशिखर पर रणभेरी बजी, देश पर युद्ध के बादल घिरे तब समस्त देश एकता के सूत्र में आबद्ध हो पुकार उठा—हिमालय हमारा है। मातृभूमि के पहरुए जाग उठे। 'कविमप्रिम' के आधार पर सरस्वती के वरदपुत्र अपनी लेखनी और वाणी द्वारा राष्ट्र की आत्मा जाग्रत करने में लीन हो गये। प्रान्त का तरुण कवि होने के नाते राष्ट्र को युद्ध के दिनों में एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न मैंने अपनी रचनाओं से किया है। युद्धकालीन रचनाओं में मेरी कवितायें विजय का आवाहन करती हैं; कारण, न्याय से अन्याय सदैव पराजित हुआ है। इतिहास साक्षी है कि भारत ने किसी का कुछ छीना नहीं; किन्तु जब किसी आक्रान्ता ने इस देश की स्वतंत्रता को चुनौती दी है, उसने सहर्ष स्वीकार किया है और अपनी स्वतन्त्रता के रक्षार्थ प्राणों का उत्सर्ग करके भी देश के गौरव की रक्षा की है। प्रस्तुत काव्यसंग्रह की रचनायें देशभक्ति, विजय तथा बलिदान की भावना से ओतप्रोत होकर लिखी गई हैं। इसीलिए संग्रह का नाम है 'विजय-ध्वनि'।

'विजय-ध्वनि' मेरी कुछ राष्ट्रीय रचनाओं का पहला संग्रह है। अधिकतर रचनायें आक्रमण के बाद चुनौती और चेतावनी के रूप में हैं, किन्तु कतिपय रचनायें आक्रमण से पूर्व की हैं जिनमें अरुणाई लेते हुए भारत का चित्र है। योजनाओं के प्रतिफल से समृद्ध हरे-भरे खेतों, खलिहानों, सुन्दर उद्यानों और मैदानों पर भी मेरी दृष्टि घूमी है और मैंने विराट विकास को चेतन स्वर में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इसलिये मेरी रचना का यह

यह विस्तृत आकाश काव्य मेरा न रहा,
इस धरती की धूल बहुत है गाने को।
फूल मंजिलों की राहों को क्या जानें,
तीखे शूल बहुत हैं डगर दिखाने को।
कलम चलाता हूं खेतों, खलिहानों पर,
श्रम करने वाले जाग्रत इन्सानों पर।

मैंने अपनी कविता के प्रारम्भिक काल में वीरानों और खंडहरों में घूमकर आहें-कराहें भरना उचित नहीं समझा, अपितु यथार्थ के ठोस धरातल पर धड़धड़ाते यंत्रों पर कामरत मजदूरों और मिट्टी के जादूगर किसानों को श्रद्धा से प्रणाम किया है, जिनकी मेहनत और पसीने की एक-एक बूंद से मेरा देश प्रगति के पथ पर है। वैसे मैं अधिक प्रशंसा को पतन का द्वार मानता हूं, किन्तु यथार्थ से दृष्टि चुराना भी कवि की अकर्मण्यता है।

जहां तक मेरी युद्धकालीन रचनाओं का प्रश्न है, उनमें मैंने कलापक्ष के साथ सामाजिक दायित्व निभाने का प्रयत्न किया है। आज जब चीनियों ने विश्वासघात करके हम पर आक्रमण किया तो हमारा परंपरागत स्वाभिमान जाग्रत हुआ, धमनियां फड़क उठीं। आग उगलनेवाले काव्य ने देश में स्वाधीनता की रक्षा के लिए तन-मन-धन बलिदान करने का वातावरण तैयार कर दिया। करोड़ों कामगरों और किसानों के कर्मठ हाथ गतिशील हो उठे और सारा राष्ट्र चीनी आक्रान्ताओं के सामने अभेद्य प्राचीर के रूप में उठ खड़ा हुआ। गलत अफ़वाह फैलानेवालों को मैं देशद्रोही मानता हूं—

लोग जो अफ़वाह फैलाने लगे हैं,
देश-द्रोही हैं, ज़बानें बन्द कर दो।
रोशनी जो आंख को अन्धा बना दे—
कहो पहरेदार से वह मन्द कर दो!
फिर कभी चौपाटियों पर घूम लेंगे,
बिजलियों के अधर फिर कभी चूम लेंगे,
आज जिसको देश 'नेहरू' बोलता है—
बस उसी अवधेश ने आवाज दी है।

(देश ने आवाज दी है)

इन रचनाओं में जहां-कहीं मैं अहिंसा के आदर्श से दूर, हिंसा की ओर मुड़ने लगा हूं, लेकिन युद्ध के दिनों में चिन्तन की यह प्रक्रिया मुझे स्वाभाविक परिलक्षित हुई। गंभीर कविताओं में मैंने अपनी संस्कृति और सभ्यता का ही सूक्ष्म विश्लेषण करने का प्रयास किया है। मैं यह नहीं कहता कि मेरी रचनायें शिल्प, कथ्य और छंद की दृष्टि से सही हैं; हां, भवना की तीव्रता अवश्य है। परन्तु इसका निर्णय आलोचकों और पारखी पाठकों पर निर्भर है।

कविता, यदि वह सच्ची कविता है, तो युग-चेतना से विछिन्न नहीं रहती। इसका कारण यह है कि कवि सामान्य लोगों से अधिक संवेदनशील होता है और उसकी क्रियाशीलता निरंतर स्पंदित होती रहती है। कवि अपने समय में अपने समाज का [illegible] सचेत व्यक्ति होता है।

"Poetry matters because of the kind of poet who is more alive than other people, more-alive in his own age."
—F. R. Lewis

(New Bearings In English Literature—Pages 13-14)

हिन्दी-कविता के बारे में, मैं डा० नगेन्द्र के इस कथन से सहमत हूं कि "आज हमारे पैरों की जमीन स्थिर नहीं है; परम्परागत मूल्य खोखले होगये हैं और नये मूल्य अभी निःसत्व हैं।" आज जीवन और राष्ट्र में अनेक उलझी हुई अन्तःप्रवृत्तियां हैं और साधारणतः उनका स्वच्छ विश्लेषण संभव नहीं है। परन्तु यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट रूप से आज की दुनिया के सामने उपस्थित हो गया है और वह है परस्पर विरोधी विचारधाराओं का संघर्ष। इन्हें स्थूल रूप से दक्षिणपक्षीय और वामपक्षीय विचारधारा कहा जासकता है। किन्तु मेरे कवि ने किसी 'वाद' या 'धारा' में सम्मिलित होने का प्रयत्न नहीं किया। मैं राष्ट्रीय रचनाओं के अतिरिक्त प्रायः गीत लिखता हूं।

मेरी मान्यता से आधुनिक कविता दो धाराओं में विभक्त की जा सकती है (१) गीतिधारा (२) प्रयोगवाद या नयी कविता। पहले गीतिधारा पर विचार कर लें, फिर प्रयोगवाद की विवेचना होगी। गीत हृदय की भावना को अभिव्यक्त करने का सुन्दरतम माध्यम है। या हम यों कह सकते हैं कि जब हमारे आन्तरिक भाव कविता में व्यक्त नहीं हो पाते, तब गीत का जन्म होता है। गीत में लय होती है, रस होता है। डा० मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में "पट की सीमा हो सकती है; रस की नहीं।" गीत का क्षेत्र

व्यष्टि से समष्टि तक होता है। रामकुमार चतुर्वेदी के शब्दों में "गीत दिन की धूप और रात की चांदनी की तरह सब के हैं।" नये गीत जन्म ले रहे हैं, नयी शैली और नये बिम्बों में। आधुनिक गीतकार नयी कविता और उसके समर्थकों की अपेक्षा स्वस्थ दृष्टिकोण और उदात्त कला का सृजन कर रहे हैं। उनमें यौवन की सृजनात्मक शक्ति, बौद्धिक गहराई, मानवता के प्रति प्रेम, मानवीय सभ्यता एवम् संस्कृति के शत्रु को समझने की अभूतपूर्व क्षमता, राष्ट्रीय प्रेम की अतिशयता, शोषण का विरोध, अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारा, आक्रान्ता को चुनौती की भावना विद्यमान है।

दूसरी धारा है प्रयोगवादी। यह पश्चिम का अंधानुकरण होने से हमारी धरती के प्रतिकूल है। पश्चिम में ऐसी कविताओं को समाधि लग चुकी है। इनमें रस नहीं, ध्वनि नहीं, अलंकार नहीं तथा सौन्दर्यबोध की क्षमता नहीं। ऐसी सीमित और दुर्बोध कविता को भला कौन अपना सकता है। गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों में "आज नयी कविता की ओट में कुछ खोटे सिक्के भी चलाये जा रहे है, किन्तु समय उन्हें बहुत शीघ्र कूड़े के ढेर में फेंक देगा।" आज का युग बौद्धिक है, कोरी भावुकता और तुकवन्दी के जमाने लद गये। आज के बौद्धिक समाज को जादू के डंडे से नहीं हांका जासकता। उसे हल्के-फुल्के 'सिनेमा टाइप' गीतों की आवश्यकता नहीं, वरन् ऐसे ठोस और गम्भीर काव्य की नितान्त आवश्यकता है जो हृदय और बुद्धि में समन्वय कर सके। नेहरू जी की घोषणा आधुनिक काव्य के लिये उचित ही है कि इस उपग्रह युग में हमें संकुचित विचारधारा छोड़नी पड़ेगी। अब पिछड़े

हुए ख्यालातों से काम नहीं चलेगा। आज कबीर, तुलसी, सूर की भूमि के कवियों को अपनी स्वतंत्र दृष्टि अमेरिका से जापान तथा उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव, अनन्त आकाश, अतल सागर तक फैलानी पड़ेगी। बहरहाल दोनों धाराओं के समर्थकों से मैं फिराक साहब के शब्दों में अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा:—

जो ज़हरे हलाहल है, अमृत है वही नादां,
मालूम नहीं तुझको अन्दाज है पीने का।

पुस्तक के प्रकाशन की प्रेरणा मुझे मध्य प्रदेश के उद्योगमंत्री श्री नरसिंहराव जी दीक्षित से मिली है, जिन्होंने मुझे सुना, सराहा और उत्साहित किया। उन्हें धन्यवाद क्या दूं, पुस्तक ही समर्पित कर रहा हूं। आदरणीय रामसहाय जी पांडे, सदस्य लोकसभा, का आभारी हूं जिन्होंने व्यस्त रहकर भी पर्याप्त सहयोग दिया। वैसे तो हर साहित्यिक मित्र से मुझे कुछ न कुछ प्रेरणा मिली ही है, किन्तु आदरणीय देवराज दिनेश, बालस्वरूप 'राही', रामकुमार चतुर्वेदी और भाई आनन्द मिश्र का हृदय से आभारी हूं।

मुद्रण एवम् प्रकाशन में श्री रामप्रताप जी एम. ए., साहित्यरत्न का आभारी हूं जिनकी सहायता से मेरे कुछ गीतों को पुस्तक का रूप मिल सका।

मुझे विश्वास है 'विजय-ध्वनि' देश में राष्ट्रीय वातावरण की सृष्टि करेगी। यदि प्रस्तुत संग्रह की एक भी पंक्ति किसी उदास

मन के भीतर आशा का दीपक जला सकी तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा। इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।

होलिकादहन
२६, फरवरी १९६४ —नरेन्द्र 'चञ्चल'
साहित्य-संगम
तूमैन, अशोकनगर

'विजय-ध्वनि' का दूसरा संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण आपके हाथ में है। विज्ञ पाठकों ने इस संग्रह के प्रकाशन से जो उत्साह मुझ में जगाया है, मेरी निधि है। शीघ्र ही दूसरा संग्रह 'मन के अक्षर' आप तक भेज रहा हूँ। आशा है इस संग्रह में मेरी काव्य-साधना अधिक परिष्कृत होकर सामने आयेगी। शिक्षा-विभाग के उन अधिकारियों का आभारी हूँ जिन्होंने इस राष्ट्रीय संग्रह को सरस्वती साधना मन्दिरों तक पहुंचाने में मुझे सहयोग दिया है। उन समीक्षकों का जिन्होंने संग्रह का विश्लेषण साफ़ दिल से किया है, उन सब पाठकों का जिन्होंने संग्रह पढ़कर मुझे अपनी सम्मति से अवगत किया है, हार्दिक आभार मानता हूँ।

इत्यलम्

—नरेन्द्र 'चञ्चल'

अनुक्रमणिका

(१)	शहीद की मां के प्रति	१
(२)	जयघोष	४
(३)	प्रयाण गीत	७
(४)	देश ने आवाज दी है	८
(५)	चीन के नाम	११
(६)	ज्योति-प्राण देश के	१४
(७)	विजय का विश्वास	१६
(८)	हर पहरुआ रुद्र का अवतार है	१८
(९)	मेरा देश नहीं झुक सकता	२०
(१०)	बढ़ता चल ओ नौजवान	२२
(११)	हारे हुए आदमी से	२६
(१२)	चन्देरी के जौहर स्मारक से	२९
(१३)	आक्रान्ता से !	३२
(१४)	खा नहीं सकता हिमालय मात !	३५
(१५)	पुरानी पीढ़ी से	३६
(१६)	जागते रहना पहरुए	३८

(१७) भारत-वन्दन ४०
(१८) उसी वतन का आभारी हूं ४३
(१६) मेरी नाव भटक जाती है ४५
(२०) गंगा को पाती आई है ! ४७
(२१) छब्बीस-जनवरी ५०
(२२) हम भारत-माता के बेटे ५४
(२३) मंजिल पलक बिछाये होगी ५६
(२४) जागरण के दूत ५८
(२५) पन्द्रह अगस्त ६०
(२६) देश बढ़ता जारहा है ६३
(२७) श्रम की गंगा ६५
(२८) संयुक्त गान ६७
(२६) मैं गाता हूं गीत ७०
(३०) बढ़ते जाओ ७२
(३१) पर्वत पर राह बनाते हैं ७४
(३२) आगया मधुमास, देखो ! ७६
(३३) सान्ध्य-वेला ७८
(३४) यह वेला निर्माण की ८०
(३५) निराला के प्रति ८३

(३६) निर्माणों का गीत ८५

(३७) मैं मुसाफ़िर हूं ८७

(३८) भगीरथ गंगा लायेगा ८६

(३६) उद्‌बोधन गीत ६१

(४०) युग-नायक से ६३

(४१) प्रणाम नही करता ६५

(४२) व्यर्थ नहीं जाती कोई आराधना ६७

(४३) बांध के पानी नहीं हैं ६६

(४४) नई रोशनी है १०१

(४५) उदासी में न बीते १०३

(४६) मैं चलता हूं १०५

(४७) आदमी त्यागी नही है १०७

(१७) भारत-वन्दन ४०
(१८) उसी वतन का आभारी हूं ४२
(१९) मेरी नाव भटक जाती है ४५
(२०) गंगा की पाती आई है ! ४७
(२१) छब्बीस-जनवरी ५०
(२२) हम भारत-माता के बेटे ५४
(२३) मंजिल पलक बिछाये होगी ५६
(२४) जागरण के दूत ५८
(२५) पन्द्रह अगस्त
(२६) देश बढ़ता जारहा है
(२७) श्रम की गंगा
(२८) संयुक्त गान
(२९) मैं गाता हू गीत
(३०) बढ़ते जाओ
(३१) पर्वत पर राह
(३२) भागया
(३३)
(३४) यह
(३५)

शहीद की मां के प्रति !

आज इकलौता तुम्हारा पुत्र रण में काम
रो रही हो तुम, हिमालय के नयन भरने लगे
वह तुम्हारे ही मुकुट के वास्ते आगे बढ़ा
वह नहीं सोया, हजारों देश के प्रहरी जगे

डूबता है रोज सूरज, क्या कभी उगता नहीं
मां, न आंसू ढाल उसने देश के हित प्राण त्या
आज वह इतिहास का गौरव बना, सानी न जिसक
आज हिन्दुस्तान से टकरा रहे दुश्मन अभा

भूमि के बदले मनुज के प्राण उसको भा गये हैं,
और हम समझा रहे हैं मरण के दिन आगये हैं।
किन्तु मां, इसने अभी तलवार पहचानी नहीं है;
कोरिया का या किसी मैदान का पानी नहीं है।

मां, तुम्हारा पुत्र मरकर भी अमर है मान जाओ,
प्राण का बलिदान जिस पर स्वर्ग ने माथा झुकाया।
प्राण का बलिदान जिस पर स्वर्ग ने आंखें भिगोः
देश का सम्मान जिस पर चाद ने भी गम मना

मां, तुम्हारा पुत्र गंगा की हिफ़ाजत को लड़ा था,
जो हमारे पूर्वजों की अस्थियां पहचानती है।
मां, तुम्हारा पुत्र कालिन्दी बचाने को गया था,
जो हमारे कृष्ण की पदचाप तक को जानती है।

मां, तुम्हारा पुत्र गीता की हिफ़ाजत को लड़ा था,
पृष्ठ जिसके आज भी अन्याय सह सकते नहीं हैं।
इंच भर भी भूमि दुश्मन की परिधि में रह न जाये,
पांडु के वंशज अधिक चुपचाप रह सकते नहीं।

शहीद की माँ के प्रति

हैं तो गर्व होना चाहिये उस लाड़ले पर,
म्हारा दूध पीकर देश के हित काम आया!
जिसका युद्ध में था, कर्म जिसका युद्ध में था;
ु जितनी पास आई और उतना मुस्कराया!

बूँद उसके खून की अब बिजलियों को जन्म देगी,
आग होगी अस्थियों में, देह में तूफान होंगे।
वह वतन के वास्ते मर, पुण्य संचित कर गया है;
नई पीढ़ी के अधर पर शहीदों के गान होंगे।

र प्रतिशोध की ज्वाला हृदय में जल रही है,
अपमान का बदला जवानी मांगती है।
सिर पर बांधकर हम हवन करने को चले हैं—
नया बलिदान गीता की कहानी मांगती है।

———

जयघोष

घायल भारत आवाज लगाता है हमको,
रणभेरी की आवाज कहीं से आती है,
युग के भूषण वीरत्व जगाते फिरते है
अर्जुन को आई दुर्योधन की पा

मेरा भारत सर्जन का ऋचा पढ़ रहा है,
घड़घड़ा रहे हैं यंत्र नई रफ्तारों में।
बांसुरी ज्ञान की बजा रहे हैं गाँव-गाँव—
उठती है नई लहर वीणा के तारों में।

हर गाँव चिकित्सा का प्रबन्ध करने में रत,
जैसे ही आया ज्ञान, अविद्या भागी है।
पंचायत गंगा बनकर कटुता धोती है—
जागा है सारा देश कि जनता जागी है।

तीर्थ अभी तक रामेश्वर, बद्रीविशाल ;
भाखड़ा-भिलाई श्रम के तीरथ बनते हैं।
चम्बल का पानी ज्योति दान में देता है
अंधे पथ पर खम्बे बिजली के तनते है।

लें लहराकर केश खेत में झूम रहीं,
थकते किसान के मन में धीरज आता है।
अगले वर्षों की नई रूप-रेखा रचता—
मिट्टी से ही मिट्टी का कर्ज चुकाता है।

कहने का अर्थ कि सारा देश अभी
व्यस्त सृजन में, पल भर को अवकाश नहीं।
तुमने दावी है भूमि, ज्ञात है अर्जुन को—
पर अभी रुधिर की उसके मन में प्यास नहीं।

का उत्तर जल्दी ही तुम पाओगे,
ण्डीव मचलता है तरकश की कोरों में,
इस युग का अर्जुन वैज्ञानिक साधन वाला—
देंगे जवाब तोपों से; गन के शोरों में!

विजय-ध्वनि

संग्राम हमारा आदि-धर्म कहलाता है,
हमको वेदों की वाणी ने अब तक रोका।
अर्जुन को उमड़ा मोह इसी से देर हुई,
कुछ देर युधिष्ठिर ने भी इस रण को टोका।

जितने सैनिक रण में हो गये शहीद अभी,
उनकी कुर्बानी याद दिलाये देते हैं।
उनका वीरत्व तुम्हें भी होगा ज्ञात अभी,
फिर पौरुष की भाषा समझाये देते हैं।

संग्राम भूमि के लिये वीर कब लड़ते हैं?
अन्याय मिटाया करते हैं निज भुज-बल से।
संसार न्याय का अर्थ अनर्थ नहीं कर दे,
वे सदा विजय पाते हैं मन के सम्बल से।

विश्वास हृदय का प्रतिक्षण बढ़ता जाता है,
जयघोष यही, अन्याय न्याय से हारा है।
लोहू से भीगे चरण बढ़ाये आगे फिर—
हर फूल जला देगा तुमको, अंगारा है।

प्रयाण-गीत

बढ़े चलो, बढ़े चलो, यही जनम, यही मरण !

चलें हजार आंधियां
न पांव डगमगा सके
दुश्मनी — प्रहार से
न आंख डबडबा सके।
शक्ति का पहाड़ हो, नहीं रुके बढ़ा चरण।

शपथ तुम्हें गरीब की,
शपथ तुम्हें समाज की
तुम भरत के देश के—
शपथ तुम्हें रिवाज की!
लड़ो-भिड़ो, कटो-मरो, अगर बचा सको चमन।

बिजलियाँ हजार बार
गिर चुकी हैं नीड़ पर।
किन्तु दुश्मनों ने आज,
वार किया रीढ़ पर।
युद्ध वीर के लिये, कायरों को है शरण।
बढ़े चलो, बढ़े चलो, यही जनम यही मरण॥

देश ने आवाज दी है।

रूप, तुझसे फिर कभी होगी सलामी ;
कुन्तलो, फिर छांह ले लेंगे तुम्हारी ;
चांदनी, मदिरा पियेंगे फिर कभी हम—
आज हमको देश ने आवाज दी है।

देश ने आवाज दी है।

अब हमें अवकाश मिल पाना कठिन है,
खेत की फसलें मदावरुत मांगती हैं।
अन्न के दाने हवाओं में किलकते—
आज धरती जोश, हिम्मत मांगती है।
फूल-कलियो, फिर तुम्हारी गंध लेंगे;
तारको, तुमको गिनेंगे फिर कभी हम—
युद्ध में पौरुष हमारा देख लेना—
रुद्र के आवेश ने आवाज दी है

तीर नयनों से चलाना फिर कभी तुम
आज मरहम की जरूरत घाव को है।
चांदनी में फिर कभी यमुना नहाना
आज रक्षा की जरूरत नाव को है।
चन्द्रकिरणो, फिर तुम्हारी ज्योति लेंगे;
बागवानो, फिर तुम्हें उपहार देंगे—
केश बिखरे बांधकर ही चैन लेंगे—
द्रौपदी के वेष ने आवाज दी है।

विजय-ध्वनि

आंख में रंगीन सपनों को न पालो,
सत्य धरती पर उतरकर आगया है।
शान्ति की वीणा बजाओ न अब नारद—
युद्ध का रव हर दिशा में छा गया है।
सेज की सिकनें संवारेंगे कभी फिर,
शाम के क्षण हँस गुजारेंगे कभी फिर,
नीति का दावा किया करते सदा जो—
बुद्ध के आदेश ने आवाज दी है।

लोग जो अफवाह फैलाने लगे हैं,
देशद्रोही हैं, जबानें बन्द कर दो।
रोशनी जो आँख को अन्धा बना दे—
कहो पहरेदार से वह मन्द कर दो!
फिर कभी चौपाटियों पर घूम लेंगे,
बिजलियों के अधर फिर कभी चूम लेंगे,
आज जिसको देश 'नेहरू' बोलता है—
बस उसी अवधेश ने आवाज दी है।

चीन के नाम

आवाज हिमालय से कैसी यह आती है !
गंगा-यमुना के पानी में कैसी लाली ?
दुश्मन माता का आंचल खींच नहीं सकता—
आखिरी सांस तक करना होगी रखवाली।

जब मौत किसी के सिर पर चढ़कर आती है,
तब बुद्धि-नाश उसका पहले हो जाता है।
वह चरण बढ़ाता है अपने पागल होकर—
फिर महानाश की घाटी में खो जाता है।

यदि जनसंख्या बढ़ जाय देश के भीतर तो
इस तरह कटाने से कल्याण नहीं होगा।
ओ चीन, तुम्हारी बर्बरता को देख-देख
मानवता के ऊपर एहसान नहीं होगा।

विजय-ध्वनि

तुम इतिहासों के दाग नहाये जाओगे,
उपवन के खातिर प्राण नहाये जाओगे ।
तुमने भारत की भूमि दबाना चाही है—
तुम खूनी युग के भाग बहाये जाओगे ।

यह देश हमारा अमन-चैन से रहता था,
हम पंचशील के गाने गाया करते थे ।
जिनसे सारा संसार समेटे गंध मधुर—
हम उस संस्कृति के फूल खिलाया करते थे।

हमने तुमसे भाई का नाता पाला था,
तुम समझे शायद ताकत में कमजोर हमें।
बारूद यहां रेशम के अन्दर होती है—
तुम समझे शायद केवल रेशम-डोर हमें ।

इतिहास हमारा शायद पढ़ा नहीं है तुमने,
अभिमान सिकन्दर का पानी कर डाला था।
जिसकी धड़कन से हल्दीघाटी लाल हुई—
वह सिर्फ एक राणा प्रताप था।

फजल खाँ का अभिमान शिवा से टकराया,
वह एक वाघनख का प्रहार भी सह न सका।
तलवार हाथ में लिये छोड़ संसार गया—
जो हमसे टकराया वह जीवित रह न सका !

ारिराज हिमालय को तुम लेने आये हो।
क्यों प्राण सैनिकों के तुम देने आये हो ।
शंकर की अगर तपस्या में खलबली मची—
ओ चीन, प्रलय में डूबोगे, भरमाये हो।

मने यदि युद्ध नही रोका ओ हैवानो,
हर बर्फानी चट्टान खून बन जायेगी ।
हम सिर पर बांधे कफन युद्ध में आते है—
यह साम्यवाद की छाती छन-छन जायेगी ।

द् नई फसल आशीष दे रही है तुमको,
तुम युद्ध भूमि मे प्यासे मारे जाओगे ।
तुम और अगर टकराये वीर जवाहर से—
घायल विषधर से सारी उमर गँवाओगे

———

ज्योति-प्राण देश के

नौजवान देश के,
हुक्मरान तुम्हें सलाम;
स्वाभिमान देश के,
तुम झुको नहीं कहीं।

[illegible] हो,
[illegible] रहे हो,
[illegible],
[illegible] रहे हो।

[illegible] [illegible],
[illegible] [illegible],
[illegible] देश के—
तुम झुको नहीं कहीं

ज्योति-प्राण देश के !

मने पहाड़ हो,
ह की दहाड़ हो,
र्पिणी सी राह हो,
पर न कम उछाह हो।

भावना लिये सजल,
पुकारता तुम्हें गगन ।
ज्योति-प्राण देश के—
निहारती तुम्हें मही ।

ु में उफान हो
तुम मगर जवान हो ।
धार चीर कर चलो
कूल से गले मिलो ।

कल्पना लिये मृदुल
सवारती अलक किरण ।
दीप्तमान देश के—
तुम रुको नहीं कहीं ।

विजय का विश्वास

मातृभू का मिल गया आशीष पावन,
विजय का विश्वास लेकर बढ़ रहे हैं।

तमिस्त्रा का दर्प सहसा तोड़ने को,
प्रात का अमरत्व जग में छोड़ने को,
न्याय से सम्बन्ध मन का जोड़ने को,
पाप का घट दुश्मनों का फोड़ने को,
नीति से संघर्ष का संकेत पाकर—
हम नया मधुमास लेकर बढ़ रहे हैं।

विजय का विश्वास

हम मशीनें घड़घड़ाते आ रहे हैं,
कारखानों को चलाते आरहे हैं,
बांध नदियों पर बनाते आरहे हैं,
पसीना अपना बहाते आरहे हैं,
सृजन से संघर्ष का संकेत पाकर—
त्याग का इतिहास लेकर बढ़ रहे हैं।

हर पहरुआ रुद्र का अवतार है

बिजलियों ने नीड़ घेरा,
हो रहा असमय अंधेरा।

किन्तु मेरे देश घबराना नहीं,
हर सिपाही मरण को तैयार है।

छल स्वयं छलता छली को;
मौत बनकर घात करना,
धूप में बरसात करना,
यह तुम्हारा क्या नियम है?

भूल से कुछ खो गये हैं
वे न समझो सो गये हैं।

देश, प्यारे देश पछताना नहीं;
धूल का हर कण बना अंगार है।

हर पहरुआ रुद्र का अवतार है

हर सदी यह जानती है,
ध्वंस का माथा झुका है।
चार क्षण को राहु ग्रस ले—
सूर्य का रथ कब रुका है।

जब बहादुर जागते हैं,
दूत अरि के भागते हैं।

देश मेरे, आंख भर लाना नहीं;
हर पहरुआ रुद्र का अवतार है।

माँ लगा दो आज टीका,
रक्त से अरि के नहा लूं,
बाँधकर तलवार कटि में,
देश का ऋण भी चुका लूं।

कफन सिर पर बाँधते हैं,
घाटियों को लांघते हैं।

देश मेरे फिर न सो जाना कहीं,
चन्द-भूषण की यही हुंकार है।

मेरा देश नहीं झुक सकता

ा देश नही झुक सकता अपमानों के सामने,
: नहीं, दो नही, हजारों तूफानों के सामने

विजय सत्य की होती है,
गहरे-गहरे मोती हैं ।

सके बलिदानों की गाथा पूछो हर गलयारे से
मन्दिर-मस्जिद-गिरजाघर से या जाकर गुरुद्वारों से
झांसी की रानी से पूछो, वीर शिवा या भूषण से-
हल्दी घाटी के प्रताप से, जौहर के अंगारों से

हम से जो टकरायेगा,
मिट्टी में मिल जायेगा ।

मेरा देश नहीं झुक सकता पवमानों के सामने
एक नही, दो नही, हजारों तूफानों के सामने

मेरा देश नहीं झुक सकता

कमी नही है आज देश में मुझको भामाशाहों की
कदम रख दिये हैं जो आगे, पीछे नहीं हटायेंगे ।
यह मिट्टी का कर्ज प्राण देकर भी नही चुका सकते,
सिर पर कफ़न बांधकर हम रण में कौशल दिखलायेंगे।

नेफा घर का द्वार है,
यह लद्दाख हमारा है ।

मेरा देश नही झुक सकता शैतानों के सामने
एक नही, दो नही, हजारों तूफानों के सामने ।

गंगा का पानी उबल रहा, यमुना रुला रही हिलोरें है
फिर मांगा है बलिदान आज ब्रह्मा की घाटी ने।
आन पड़ी देश की आजादी ने तुमको आज पुकारा है--
आशीष तुम्हें भारत-माँ का, आवाज लगाई माटी ने।

अब लाज नही जाने पाये,
हर तुतला बच्चा कट जाये ।

सीमा के लोभी और स्वार्थी इन्सानों के सामने
एक नही, दो नही, हजारों तूफानों के सामने।

बढ़ता चल ओ नौजवान !

ओ नौजवान, तुमने कैसा संकल्प किया,
तुम बीच राह से लौट रहे अपने घर को।
मंजिल जयमाला लिये प्रतीक्षा में व्याकुल—
सरवर की ओर चल पड़े तजकर सागर को।

इस तरह लौटना है अपकीर्ति जवानी की,
इस तरह लौटना बदनामी का कारण है।
पथ के कांटो से तुम इतने भयभीत हुए,
यह भूल गये कांटों से आगे नन्दन है।

तुम आंधी के झोकों से हुए पराजित हो,
लेकिन मंजिल का आंगन संगमरमरो है।
तुम बाधाओं के सम्मुख माथा झुका रहे,
पर मंजिल पर फलों की छाया गहरी है।

बढ़ता चल ओ नौजवान!

तुम तपन धूप की सहन नहीं कर पाते हो,
लेकिन छाया संगाती है यह भी भ्रम है।
जो बाधाओं की रीढ़ तोड़कर चलता है
उसका जीवन यश और स्वेद का संगम है।

तुम देख-देखकर तुंग-शृंग यह सोच रहे,
मंजिल के दर्शन करना सचमुच खेल नहीं।
तुम देख रहे सरिताओं को, चट्टानों को—
फिर सोच रहे मंजिल का संभव मेल नहीं।

लेकिन यह पौरुष नहीं, तुम्हारी कमजोरी;
पीढ़ियां लिखेंगी नाम सिर्फ गद्दारों में।
मंजिल की वह जयमाल म्लान हो जायेगी—
जीवन की ध्वनि खो जायेगी गलियारों में।

यह जीवन अपना तेजवन्त दोपहरी सा,
छाया में सोने वाले मंजिल से अजान।
संघर्षों पर जय पाना मन का प्रमुख ध्येय,
मानवता के हित में मरना अच्छी रुझान।

१८१

तुम बढ़े चलो चाहे जितना अंधियारा हो,
तुम ज्योतिपुत्र दिनमान उगाते आये हो।
ध्वंसों की छाती पर सर्जन के फूल खिला—
मरुथल में गंगा की धारायें लाये हो।

ये हवा और अंधियारा केवल पल भर को,
मनहूस अमावस पर पूनम हावी होगी।
साहस के सम्मुख आलस ठहर नहीं सकता—
सूखे कंठों पर नम शवनम हावी होगी।

तुम जितने-जितने ज्वालाओं में झुलसोगे,
कञ्चन से बढ कुन्दन तक होते जाओगे।
सूरज कितने भी अंगारे बरसाये, पर
तुम गरल-रहित चन्दन से होते जाओगे।

मत लौटो यूँ जीवन की सुबह बुलाती है,
जब पांव रखा आगे फिर पीछे जाना क्या?
जिसने बहार को जन्म दिया हो मधुवन में,
शूलों की तीखी चुभन देख पछताना क्या?

बढ़ता चल ओ नौजवान !

जिसकी बांहों ने सागर मंथन कर डाला
फिर भी हंसते-हंसते पीता हो हलाहल;
ऐसे त्यागी से कौन वीर टकरायेगा,
जिसने मरुस्थल के आंगन बरसाये बादल?

बढ़ना चल आगे, नौजवान, संदेह न कर,
मंजिल ने अपने पलक बिछाये राहों पर।
यों म्लान न हो जाये उसकी यह विजयमाल—
मोती-प्रवाल भी मिलते हैं पर थाहों पर।

हारे हुए आदमी से

क्यों आज हथेली रखी हुई है माथे पर,
क्यों आज उदासी के यह बादल छाये हैं,
क्यों आज हृदय की आभा डूबी स्याही में,
यह गीले-गीले नयन और भर आये हैं।

इतना है मुझको ज्ञात कि तुम अब ऊब गये,
अब नहीं चाहते साँसों की नौका खेना।
उस पार खड़ी जो मंजिल प्रश्न पूछती है,
तुम नहीं चाहते प्रश्नों का उत्तर देना।

पर ओ हारे इन्सान, अभी थकना कैसा?
पथ के चढ़ाव में खुद ही आती है ढलान।
धूप बदल कर रूप यहाँ छाया कहलाती—
लो तुमको अनुभव देती है कवि की मुस्कान।

हारे हुए आदमी से

तुम अरुणारी संध्या की व्यथा सुनाते हो,
भोर खड़ी है स्वागत में माला लेकर;
तुम आत्मनाश कर रहे ज़हर को पी-पीकर
सुधा खड़ी है स्वागत में प्याला लेकर।

पतझड़ ने तुमको लूटा है, यह झूँठ नहीं,
पर तुमने हंसना देखा नही बहारों का।
लहरों के प्रबल थपेड़ों मे तुम हार गये,
पर तुमने जादू देखा नहीं किनारों का।

तुम शूलों की ही चुभन देखकर हार गये,
फूलों मे दो-दो बात नही कर पाये तुम।
तुम भ्रमरों की गुनगुन में उलझे-डूबे हो—
पर कलियों मे सौगात नही कर पाये तुम।

धोखा तो सब को खाना पड़ता है जीवन में,
जो धोखा खाकर संभल गया वह पार गया।
कितने भस्मासुर अब भी मगन बने बैठे—
वह भागीरथ -`

बाधाओं से जूझो, तूफानों से उलझो—
जीवन से थकना, कमजोरी-लाचारी है।

चन्देरी के जौहर स्मारक से

ओ जौहर के स्मारक, तुम चुपचाप खड़े,
पर कवि के नयनों में पानी भर आया है।
वे भव्य दुर्ग ढह गये, शेष गुमसुम खंडहर—
यह आसपास काली धरती की छाया है।

सोलह सौ क्षत्राणी की यादगार हो तुम,
जिनने तुमने शिशुओं की पावन-प्रतिमा हो।
जिनने राजपूतों की बांहों के पौरुष हो—
हो पाषाणी लेकिन भारत की गरिमा हो।

यह एक-एक अक्षर जो तुम पर लिखा हुआ,
वीरों की बांहों को गीता की भाषा है।
तुममें बंटा है त्याग स्वयं हो मूर्तिमान,
तुममें सोई अग्निमाला की अभिलाषा है।

तुम में भारत की त्याग-तपस्या है ज्वलन्त,
तुम से माटी का कर्ज चुकाना सीखे जग।
तुम आदर्शों के अभिनव कला-निकेतन हो,
तुम से जीवन का धर्म निभाना सीखे जग।

तुम में स्वदेश का मान हिलोरें लेता है,
जीवन के प्रति गुणगान हिलोरें लेता है।
जिसके कारण जौहर की ज्वाला जलती है,
चन्दन-चर्चित पवमान हिलोरें लेता है।

मैं जितना अधिक देखता आँखें भर आतीं,
मैं जितना अधिक सोचता आँखें झुक जातीं।
जब मन में जलते यौवन की आँधी आती,
युद्धों के लिये घृणा से भर आती छाती।

तुम जहाँ खड़े हो एक अजब सा सूनापन,
पर कवि के मन को लगता जैसे अपनापन।
धरती पर फैली स्याही सी, तृण एक नहीं—
था किसी समय यह भी तो एक सुन्दर उपवन।

चन्देरी के जौहर स्मारक से

ओ जौहर के स्मारक! तुम चुपचाप खड़े,
पर कवि के नयनों में पानी भर आया है।
वे भव्य दुर्ग ढह गये, शेष गुमसुम खँडहर—
यह आसपास काली धरती की छाया है।

आक्रान्ता से!

इस कलुषित मन को धो डालो,
जिसने खास पड़ोसी का घर
मद में आकर जला दिया है—
झरते सुमन श्राप देते हैं।

जब मधुवन में मधुऋतु आई,
तब तुमने ज्वाला सुलगाई।
आंधी को आमंत्रित कर के—
तुमने तट पर नाव डुबाई।

बदलो यह आचरण तुम्हारा।
कर लो वापिस चरण तुम्हारा।
अमृत में विष मिला दिया है—
उजड़े सदन श्राप देते हैं।

आक्रान्ता से !

गंध कभी प्रतिबन्ध न सहती,
अविनश्वर है, डरती कब है।
जिसके पवन सरीखे चाकर—
साथ फूल के झरती कब है।

खून शहीदों का कहता है,
व्यय का मोल नहीं रहता है।
हिमगिरि पायल बना दिया है—
कटते चरण श्राप देते हैं।

है अशोक मन, युद्ध घृणित है,
इसका अर्थ न हम डरते हैं।
जब अपनी पर आजाते हैं—
एक मारता सौ मरते हैं।

मां की गोद हो गई खाली,
कंगन टूटे, कलाई सूनी।
मांगों का सिन्दूर पुछ गया—
व्याकुल नयन श्राप देते हैं।

विजय-ध्वनि

हमने तुम्हें सिखाया जीना,
तुमने मरण शब्द रट डाला ।
नक्शे बदले, रंगा बदली—
इतनी क्यों पी बैठे हाला ।

सारी जनता जाग चुकी है ।
मोह-नींद सब त्याग चुकी है ।
रक्तिम उठती हुई जवानी—
तुतले वचन श्राप देते हैं ।

खा नहीं सकता हिमालय मात !

नौजवानों के लहू में आगया तूफान फिर से,
एकता में बंध गया है आज का इन्सान फिर से।
सिर्फ प्रारंभिक चरण में हो न सकती जीत,
शान्ति की पावन घड़ी में युद्ध का संगीत।
हार जायेगी सुबह से रात, मेरे देश,
खा नहीं सकता हिमालय मात, मेरे देश !

हम खिलाना चाहते थे म्लान मुख के फूल,
किन्तु मलयज की जगह आंधी बनी प्रतिकूल।
किन्तु आंधी से नहीं डरते समय के वीर,
रक्त से रंगीन करते देश की तस्वीर।
मांग में मत भर अभी बरसात, मेरे देश,
शक्ति है अपनी जगत को ज्ञात, मेरे देश !

पुरानी पीढ़ी से

चाहते हैं हम तुम्हारे चरण-चिन्हों पर चलें, पर
तुम हमारे चरण को बदनाम करने में लगे हो।
चाहते हैं हम तुम्हारी धूल को माथे लगायें,
तुम हमें पर दम्भ की गीता सुनाना चाहते हो।
हम तुम्हारे बाग से कुछ गंध लेना चाहते हैं—
तुम हमारे पांव में कांटा चुभाना चाहते हो।
हम तुम्हारे फूल-पातों पर निछावर हो रहे हैं,
तुम हमारे चमन को बदनाम करने में लगे हो

चाहते हैं हम कि मौलिक गीत का कुछ अर्थ पूछें,
पर तुम्हें अनुवाद से अवकाश तक मिलता नहीं है।
आज परिवर्तन तुम्हारे द्वार पर उन्मन खड़ा है—
वस्त्र बदले बिन यहां सन्यास तक मिलता नहीं है।
है बहुत निर्दोष, तम के गुनाहों को पी रहा है,
तुम हमारी किरण को बदनाम करने में लगे हो

पुरानी पीढ़ी से

तुम बहारों की वसीयत दुश्मनों को कर रहे हो,
हम सुखों का अर्थ भी अच्छी तरह से जानते हैं।
किन्तु पतझर भी हमारी आंख से ओझल नहीं है,
हम तुम्हारे रास्तों के मोड़ को पहचानते हैं।
दर्द की समिधा ऋचा के नाम से जलती नहीं है—
तुम हमारे हवन को बदनाम करने में लगे हो।

जागते रहना पहरुए

ः धरातल का नहीं है युद्ध, इसके अर्थ दो हैं;
न्ति के पीछे अपरिमित शक्ति होना लाजिमी है।

ख के नीचे अगर अंगार छोड़ोगे - जलोगे;
नयी क्या बात, जलने से अंधेरा भागता है।
स्त्र से ही राष्ट्र की रक्षा, सनातन यह नियम है—
ात सोती है सदा, लेकिन सवेरा जागता है।
ाज तक अन्याय ने युग में विजय पाई नहीं है,
ाय की संसार में अभिव्यक्ति होना लाजिमी है।

न लिया मेरा पड़ोसी ताज लेना चाहता है,
-वंस का निर्माण को अन्दाज देना चाहता है।
आज फिर चंगेज को गुरुदक्षिणा की याद आई,
आंख जाने क्यों सिकन्दर की यहां पर डबडबाई।
बन्द मत कर कारखाने, बन्द मत कर खेत में हल,
आज भी श्रम की सृजन में शक्ति होना लाजिमी है।

जागते रहना पहरुए

है बबूलों का जमाना, क्या गुलाबों का न होगा?
भूमि के विस्तार से साम्राज्य टिक पाते नहीं हैं।
प्राण हँसकर दान करते, देश पर अभिमान करते—
किन्तु हिन्दुस्तान के इन्सान बिक पाते नहीं हैं।
जागते रहना, पहरुए! सिर्फ इतना ख्याल रखना,
हर सिपाही में मरण - सामर्थ्य होना लाज़िमी है।

———

भारत - वन्दन

जिसके बागों में सूरज किरण लुटाता है,
जिसकी राहों में गीत सृजन हो गाता है।
यह मेरा देश समूची धरती का सिंगार—
संसार जहां श्रद्धा से शीष नवाता है।

इसकी गंगा - यमुना जैसी सरितायें हैं,
एलोरा और अजन्ता सी गरिमायें हैं।
यह पर्वतराज हिमालय रक्षा में रत है—
जिसकी वर्फीली लेकिन पुष्ट भुजायें हैं।

जिसमें तीरथ - मन्दिर का कहीं अभाव नहीं,
जो यहां न मिलता हो वह कहीं गुलाब नहीं।
इसकी धरती में वह मनमोहना जादू है—
पानी धरती का फसलों में अलगाव नहीं।

भारत-वन्दन

है कर्मप्रधान समझने वाला देश यही,
इसको औरों की प्रगति देखकर द्वेष नहीं।
यह बाग-बाग में मुस्कानें फैलाता है—
बस इसी लिये इसके चेहरे पर क्लेश नहीं।

बहुजन हिताय मरना ही इसने सीखा है,
सर्वे भवन्तु सुखिनः ही इसकी गीता है।
यह शान्ति-क्रान्ति दोनों का ही अनुगामी है,
यह वसुधा के माथे का हीरक टीका है।

यह सदा विजय की ध्वजा-पताका फहराता,
यह जियो और जीने दो जग को बतलाता।
यह कदम मिलाकर चलने का अभ्यासी है,
इसलिये तिरंगा लाल किले पर लहराता।

मानवता के हित में यह जीता-मरता है,
यह डरता है तो व्यक्तिवाद से डरता है।
केवल उपदेश सिखाना इसका काम नहीं,
अपने मुख से जो कहता है वह करता है।

देवता स्वर्ग में इसके गीत सुनाते हैं,
इस पर रखने को पाँव बहुत ललचाते हैं।
इसके आदेशों पर ब्रह्माण्ड निछावर है—
इसके गीतों को चंदा - तारे गाते हैं।

———

उसी वतन का आभारी हूँ !

भूले - भरमाये राही को जिसने नभ से राह दिखा दी,
जिसने फूलों को लाली दी, उसी किरण का आभारी हूँ।

जिसने अधकच्ची बालों को,
खेतों में झूमना सिखाया ।
जिसने स्याह जिन्दगानी को,
पूनम में घूमना सिखाया ।
जो औरों के दुःख में छलकी, अपने दुःख में कभी न रोई,
जिसने सदा सत्य को ढूंढा, उसी नयन का आभारी हूँ।

फूलों पर है आँख सभी की,
हरियाली सब को भाती है ।
चंपा गंध लुटाता अपनी,
जुही चांदनी बिखराती है ।
जो माली की तृपा समझता, अपने रूप-रंग को तजकर,
काँटों को भी गले लगाता, उसी चमन का आभारी हूँ।

जियो और जीने दो, भाई,
यह जिसका सिद्धान्त बन गया।
घर सारा संसार लगा जब—
हर कोलाहल शान्त बन गया।
जिसने मानवता को समझा, उसने जीवन-दर्शन समझा,
जिसने पंचशील अपनाया, उसी वतन का आभारी हूँ।

मेरी नाव भटक जाती है

लहरों पर बढ़ती जाती है, भँवरों में भी मुस्काती है,
तट की ओर मोड़ देने से, मेरी नाव भटक जाती है।

शैशव की दुधमुही गंध सी,
है सरिता की धारा निर्मल।
मन की वीणा गीत गुंजाती—
दुहराती जलधारा कल-कल।
जहरीली आँधी आती है, साहस और बढ़ा जाती है,
दुर्बलता को विजय हो गई, ऐसी खबर खटक जाती है।

जैसे कारागृह में कैदी,
दर्पण में अपना मुह देखे ;
जैसे जले दर्द को कोई,
अंगारों से फिर आ सेके ;
री शाकुन्तल साधों को हर दुष्यन्त छला करता है,
री रचना के बागों में भरती कली महक जाती है।

नरम भोर की छनी धूप सी,
याद तुम्हारी मन-आंगन में।
जीवन को सम्बल देती है,
परछाईं सुख की दर्पण में।
मेरे अनचाहे यथार्थ को कब तक झुठलाओगे, भाई!
मृग-तृष्णा से भरी जिन्दगी माथा यहाँ पटक जाती है

———

गंगा की पाती आई है !

गंगा की पाती आई है,
हिमगिरि आवाज लगाता है।
जागो, जागो, पहरेदारो—
संकट में भारत - माता है।

आजाद देश की मिट्टी पर,
दुश्मन का मन ललचाया है।
पर भूल गया घायल पक्षी—
बिजली के डंने आया है।

अब खेत और खलिहानों में,
बारूद उगाई जायेगी।
मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारों में—
फौलाद ढलाई जायेगी।

विजय-ध्वनि

जो वीर देश के लिये मरें,
वे हर गायक का विषय बनें।
ऐसी मिसाल छोड़ो, वीरो,
साक्षी खुद आकर समय बने।

पनघट पर बात नहीं होती,
आल्हा का मौसम आया है।
पलकों पर कलम नहीं चलती,
छन्दों में रक्त मिलाया है।

शृंगार किसी दिन भाता था,
अंगारों के दिन आये हैं।
बलिदान माँगते प्राणों के—
त्यौहारों के दिन आये हैं।

गंगा की पाती आई है

बहिनें भाई को तिलक करें,
पत्नी स्वामी को विदा करे।
मिट्टी का कर्ज चुकाना है,
सब हँसते—हँसते अदा करें।

यमुना की पाती आई है,
क्षिप्रा आवाज लगाती है।
अब भारत की नारी-नारी,
दुर्गा बन सम्मुख आती है।

छब्बीस जनवरी

आवाज लगाओ मत हिंसा के नारों की,
मेरी धरती पर नया सवेरा आता है
बीतें शताब्दियां लेकिन इतना याद रखो,
यह बलिदानों का खून गंध बिखराता है।

जो पत्थर भरे गये हैं नींवों के भीतर,
उनके ऊपर यह महल दिखाई देता है।
भीतर अथाह गहराई है, गोताखोरो,
ऊपर-ऊपर यह कमल दिखाई देता है।

यह शिल्प-ज्ञान-विज्ञान-कला-तप-धर्म सभी,
आजादी की बगिया में खुलकर जीते हैं।
यह देश-प्रेम की मदिरा मँहगी होती है,
कुछ इने-गिने दीवाने इसको पीते हैं।

छब्बीस जनवरी

सीमावर्धन, यह क्षुद्र स्वार्थ कमजोरी है,
  हम सीमाओं में रहने के अभ्यासी हैं।
यह रेत अमन की वीर जवाहर ने सींची,
  हम तूफानों में बहने के अभ्यासी हैं।

हम नहीं चाहते नई फसल को झुलसाना,
  हम नहीं चाहते युद्ध, अशान्ति वाली ज्वाला।
पर अगर किसी ने हमको खिलने से रोका,
  इतिहास दिखा देंगे उसको जौहर वाला।

यह देश-प्रेम का नशा कर गया भगतसिंह,
  जो हँसकर फांसी के फन्दे पर झूल गया।
यह नशा हुआ आज़ाद-तिलक-गांधी को भी,
  यह नशा देखकर दुश्मन रास्ता भूल गया।

यह शायर अपनी ग़ज़ल सुनाता है, देखो,
  इसके कलाम में गंध वतन की आती है।
यह गीतकार है गाता, मधुर लहरियों में;
  यह कर्मनिष्ठ मिट्टी पर गीत सुनाती है।

विजय-ध्वनि

देखो, किसान खेतों में फसलें लहराता;
 वह लोकगीत की धुन में रसिया गाता है।
वह आज़ादी का पर्व मनाता मस्ती से,
 गेहूं की बाली देख बहुत मुस्काता है।

मजदूर बहुत खुश है, उसकी मजदूरी का
 अब अर्थ लगाया जाता है सच्चा-सच्चा।
जब कञ्चन पर अधिकार पसीने का होगा,
 उस दिन गुलाब सा झूमेगा बच्चा-बच्चा।

छब्बीस जनवरी याद दिलाती है हमको,
 आज़ादी का पथ कितना काँटों वाला था।
यह चमन उजाड़ा गया बहुत से चरणों से,
 पर आनबान माली इसका रखवाला था।

यह आज़ादी की देन, धरोहर त्यागों की,
 यह बलिदानों का बाग कभी मुरझाये ना।
जो चरण-चिन्ह जीवन की राह बनाते हैं;
 यह चरण, सृजन का चरण, कभी भरमाये ना।

छब्बीस जनवरी

यह आज़ादी का पर्व, बधाई देता हूँ,
मैं शहर-शहर में गीत सुनाया करता हूँ।
जो जाग चुके हैं, उनका मैं आभारी हूँ,
सोने वालों के लिये, जगाया करता हूँ।

———

हम भारत-माता के बेटे

खेतों में फसलें लहराते, जीवन के गीत सुनाते हैं;
हम भारत-माता के बेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

आराम हराम समझते हैं,
सूरज की किरणों में तपते,
पावस में भीग-भीग जाते,
शीतल ऋतु में कंपते-कंपते।
मौसम की चिन्ता नहीं हमें, जीवन का अर्थ बताते हैं।
हम भारत-माता के बेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

हम भारत-माता के बेटे

अधिक अन्न उपजाने का
मन में ध्रुव सा संकल्प लिये,
ऊसर को उर्वर कर डाला—
क्या काम हाथ से नहीं किये?
हम अपनी राहों पर चलते, मिट्टी में फूल खिलाते हैं;
हम भारत माता के बेटे, मंज़िल पर ही सुस्ताते है।

हम अपना जीवन होम करें,
मानवता के हित चाह यही।
जो अधिक पसीना मांग रही,
हमको चुननी है राह वही।
हम जियो और जीने दो का संगीत छेड़ते जाते हैं;
हम भारत-माता के बेटे, मंज़िल पर ही सुस्ताते हैं।

हम भारत-माता के वेटे

खेतों में फसलें लहराते, जीवन के गीत सुनाते हैं;
हम भारत-माता के वेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

आराम हराम समझते हैं,
सूरज की किरणों में तपते,
पावस में भीग-भीग जाते,
शीतल ऋतु में कंपते-कंपते।
मौसम की चिन्ता नहीं हमें, जीवन का पथ बताते हैं।
हम भारत-माता के वेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

हम भारत-माता के बेटे

अधिक अन्न उपजाने का
मन में ध्रुव सा संकल्प लिये,
ऊसर को उर्वर कर डाला—
क्या काम हाथ से नहीं किये?
हम अपनी राहों पर चलते, मिट्टी में फूल खिलाते हैं;
हम भारत माता के बेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

हम अपना जीवन होम करें,
मानवता के हित चाह यही।
जो अधिक पसीना मांग रही,
हमको चुननी है राह वही।
हम जियो और जीने दो का संगीत छेड़ते जाते हैं;
हम भारत-माता के बेटे, मंजिल पर ही सुस्ताते हैं।

मंज़िल पलक बिछाये होगी

माना मेरे थके चरण हैं,
पगडंडी भी खोज न पाया;
लेकिन मेरा मन कहता है,
मंज़िल पलक बिछाये होगी ।

उपवन से सब का क्या नाता,
जब तक फूल तभी तक बातें ।
जब तक हरियाली की आभा,
संभव मधुऋतु की सौगातें ।
लेकिन बहुत चतुर उपवन है,
गंध स्वंय भी सम्हल गई है ।
पतझर की कुदृष्टि कली पर,
मैली चाह जगाये होगी ।

मंज़िल पलक बिछाये होगी

किसने कहा कि मैं गा-गा कर,
जग का दु:ख कम कर देता हूं ।
अपनेपन में डूबा - डूबा,
रातें पूनम कर देता हूं ।

माना मेरा कथ्य सृजन है
अर्थ गीत के बदल रहे है
किन्तु सुबह को धुंधला करने
अलकें शाम गिराये होगी
माना मेरे बुरे नयन
वर्तमान पर लगे हुए
लेकिन नई सुबह की पीढ़
आगत फ़राल रखाये होगी

जागरण के दूत

जहाँ निर्माण, मुश्किल भी वहीं है ;
किन्तु मुश्किल का नया उपचार श्रम है।
आठ-दस तारे जहां मिलकर उजाला दे रहे हों,
उस जगह अंधियारा होगा, सिर्फ़ भ्रम है ।
चरण बढ़ने के लिये है, उम्र पढ़ने के लिये है;
आंख आंसू से भिगोना ठीक है क्या ?

अब नया इतिहास बनता जा रहा है,
योजनायें पुण्यमय है, फल रही हैं।
इस तरह इन्सान जादू कर रहा है,
कारखानों में मशीनें चल रही हैं ।
देश मेरा भाग के बल पर नहीं है—
इस तरह निष्काम होना ठीक है क्या ?

जागरण के दूत ! सोना ठीक है क्या ?
व्यर्थ अपना समय खोना ठीक है क्या ?

पन्द्रह अगस्त

बगिया के फूलों में यह कैसी हलचल है,
सारा का सारा मधुवन बांसों उछल रहा।
पुरवाई के झोंकों में मलयज तैर रहा,
बस्ती-बस्ती मे पांव दबाकर निकल रहा।

बाजारों में बन्दनवारों की लगी पांत,
सूरज दूल्हे सा हल्दी में है सराबोर।
गाता है गायक गीत प्रभाती का फिर-फिर,
तन मस्ती में डूबा-डूबा रस में विभोर।

यह आज़ादी का पर्व, पर्व बलिदानो का,
यह त्यौहारों का ताज, अमर भारत का दिन।
इसको पाने के कारण क्या-क्या खोया है,
इस दिन को लाने में काटे कितने दुर्दिन।

पन्द्रह अगस्त

यह आज़ादी का पर्व, देश की दीवाली,
इस रोज हमारी बिछुड़ी आज़ादी आई।
इस रोज हमारी भारत-माता मुक्त हुई,
इस रोज सुबह कुछ नया रंग ले मुस्काई।

यह आज़ादी की गंगा, इसको लाने में
जाने कितने भागीरथ मरकर अमर हुए।
कितने आज़ाद, तिलक, गांधी की आशा है;
जो मृत्य हुए, वे कञ्चन जैसे निखर गये।

यह आज़ादी का पर्व, सभी संकल्प करें;
हम शान्ति-अहिंसा की भाषा में बात करें।
एकता रखें, अस्तित्व सभी का आवश्यक,
सर्वे भवन्तु सुखिन. कहकर दुःख - दर्द हरें।

यह आज़ादी का पर्व, करें हम ज्योतिदान;
उनको मंज़िल दें, जो राहों में भटक गये।
उनको प्रकाश दें, जिनका तम से नाता है;
उनको तट दें जो लहरों में ही भटक गये।

यह आज़ादी का पर्व सिखाये मानव को,
जीवन है नाम प्रगति का, नहीं हवाओं का।
जीवन है नई-सुबह, चेतनता के खातिर;
यह नाम नहीं सट्टे की उन अफ़वाहों का।

यह आज़ादी का पर्व पसीना मांग रहा,
आलस दफ़नाकर इसकी मांग करो पूरी।
खेतों में झुम्हला नहीं सकें धानी फसलें;
वसुधा में, कुन्दन में, न रहे कोई दूरी।

देश बढ़ता जारहा है

फ़सल लहराने लगी है, श्रमिक मुस्काने लगा है,
देश बढ़ता जारहा है, मैं सृजन पर गा रहा हूं।

शूल हटते जारहे हैं, फूल फिर खिलने लगे हैं;
स्याह तम के दूत बगिया से अलग चलने लगे हैं।
सो रहे हैं उन्हें ये गीत - गायक जगाते हैं;
आलसी इन्सान सूरज की तरह ढलने लगे हैं।
कोकिला गाने लगी है, बहारें आने लगी है,
पसीना पुजने लगा है, मैं वतन पर गा रहा हूं।

ये सृजन के क्षण मिले हैं, राह युग की बन रही है;
जियो - जीने दो सभी को, सुबह नूतन छन रही है।
जागने वालो, तुम्हें सौगन्ध है रूपम सुबह की;
शत्रु है आराम पहला, प्यास बन चन्दन रही है।
हवायें चलने लगी हैं, दुआयें फलने लगी है,
लक्ष तम को भेदना है, मैं किरण पर गा रहा हूँ।

हम मरुस्थल में सलिल की धार लहराते रहे हैं,
हम घिरे तूफान में भी नाव पर गाते रहे हैं।
चार - छै पतझर हमारे बाग का क्या छीन लेंगे;
हम बहारों पर बहारें विश्व में लाते रहे हैं।
मुक्त खग आकाश में है, मुक्त मन विश्वास में है;
बन रहा इतिहास नूतन, मैं लगन पर गा रहा हूँ।

श्रम की गंगा

श्रम की गंगा अविरल लहराने दो,
ऊसर धरती उर्वर हो जायेगी।

किरणों का काम उजाला करना है,
अंधियारा मन के आलस का प्रतिफल।
सरितायें नूतन फसलें सींच रही;
सरिता की प्यास बुझाता है बादल।
सूरज की धूप निखारेगी जीवन,
चट्टान स्वयं निर्झर हो जायेगी।

सर्जन का मौसम आया मधुबन में,
तुम व्यर्थ समय चिन्ता में मत खोओ।
मुस्कान अधर पर आने को व्याकुल,
तुम पिछली भूलों पर यों मत रोओ।
युग के भागीरथ हार नहीं जाना,
आगत पीढ़ी निर्भर हो जायेगी।

काँटों का काम चुभन ही देना है,
पर फूलों ने कब खिलना छोड़ा है।
मंजिल आये या आये नहीं कभी,
राही ने कभी न चलना छोड़ा है।
यदि उगता सूरज पूजा नहीं गया,
युग की संस्कृति बर्बर हो जायेगी।

संयुक्त गान

हम फ़सल रखाया करते हैं,
हम गीत सुनाया करते हैं।
संगीत पवन को देते हैं,
धरती महकाया करते हैं।

हम स्वेद बहाया करते हैं,
कञ्चन उपजाया करते हैं।
अपना परिचय भी क्या परिचय?
जीवन को गाया करते हैं।

हम अवढर दानी जैसे हैं,
पनघट के पानी जैसे हैं।
भोलापन अपनी थाती है,
मल्हड़ सैलानी जैसे हैं।

जब हरे धान लहराते हैं,
हम मनमाना सुख पाते हैं।
बरखा की रिमझिम घड़ियों में,
आल्हा की धुन दुहराते हैं।

गीतों में कमल उगाते हैं,
शायर की ग़ज़ल उगाते हैं।
शायद तुमको विश्वास न हो,
कुटिया में महल बुलाते हैं।

आंधी-पानी की रातों में,
क्षण जाते बातों-बातों में।
जाने हमको क्या मिलता है,
इन मौसम की सौगातों में?

हमको तन की परवाह नहीं,
इस निर्जन की परवाह नहीं।
हम मन को धूप तपा रखते,
अपनी कुहपनी राह नहीं।

हम श्रम के नये भागीरथ हैं,
अपनी मंजिल के इति-अथ हैं।
हम नई डगर के राही हैं,
मेरे सब के अपने पथ हैं।

वह स्वर्ग इसी माटी में है,
सर्जन की परिपाटी में है।
मैदान चाहिये

मैं गाता हूं गीत

मैं गाता हूं गीत हरे मैदानों पर,
श्रम करने वाले जागृत इन्सानों पर।

यह विस्तृत आकाश कथ्य मेरा न रहा,
इस धरती की धूल बहुत है गाने को।
फूल मंजिलों की राहों को क्या जानें,
तीखे शूल बहुत हैं डगर दिखाने को।
कलम चलाता हूं खेतों, खलिहानों पर,
श्रम करने वाले जागृत इन्सानों पर।

मैं गाता हूं गीत

गीत किनारों पर गाना सीखा न कभी,
गीत कीमती चाहों पर ही गाता हूं ।
मंजिल से मेरी कोई पहिचान नहीं,
गीत नागिनी राहों पर ही गाता हूं ।
सर्जन का जादू करता वीरानों पर,
श्रम करने वाले जागृत इन्सानों पर।

गीत कल्पना का जो प्रायः गाते हैं,
वे यथार्थ के चेहरे से अनजान रहे ।
इस बीमार उदासी वाली दुनिया में,
अधर वही है जिन पर चिर मुस्कान रहे ।
मैं गाता हूं गीत नये निर्माणों पर,
बागों में कुहुक रही कोयल की तानों पर ।

बढ़ते जाओ

. । तक मिले न मंज़िल, तब तक बढ़ते जाओ;
है आराम हराम सृजन के देश में।

अभी-अभी तम के सागर को चीरकर,
आये हैं हम नई सुबह के गाँव में।
बन्धन-मुक्त प्रकाश ले रहे सूर्य से,
शूलों की जंजीर नहीं है पाँव में।
जब तक किरणें राह दिखातीं, बढ़ते जाओ,
मुश्किल है क्या काम सृजन के देश में।

है आराम हराम

अभी पसीना और बहाना शेष है,
अभी अधूरे फूल खिले हैं बाग में ।
अभी सींचना होगा अंकुर-पात को,
अभी जलाना है कांटों को आग में ।
जब तक मिट्टी के अधरों पर प्यास है,
मत लेना विश्राम सृजन के देश में ।

बड़ी मुश्किलों से हरियाली आ पाई,
इसके प्राण बचाना है पतझार से ।
सर्जन की मंगल वेला में मूर्ति को,
सुमन चढ़ाये जायें हरसिंगार के ।
जब तक श्रम के गीत, अधर पर हास है;
क्या छाया क्या घाम सृजन के देश में ।

पर्वत पर राह बनाते हैं

मौसम को दास समझते हैं, पर्वत पर राह बनाते हैं,
श्रम की बाहों से जीते हैं, फ़सलों पर स्वेद लुटाते हैं।

हम हरियाली फैलायेंगे,
नदियों से पानी सींचेंगे ।
जिनसे विकास के पांव बंधे,
उन जंजीरों को खींचेंगे ।
किरणों से उजियाला लेते, अंधियारा दूर भगाते हैं,
श्रम की बाहों से जीते हैं, फ़सलों पर स्वेद लुटाते हैं।

हर गांव-गांव में बिजली हो,
हर गांव-गांव में शालायें ।
पनघट के ऊपर बात करें,
अपने विकास की बालायें।
जब धानी फ़सल झूमती है, हम मनमाना हर्षाते हैं,
श्रम की बाहों से जीते हैं, फ़सलों पर स्वेद लुटाते हैं।

पर्वत पर राह बनाते हैं

हर गांव - गांव में पंचों से,
हर कृषक-कृषक को न्याय मिले।
दुर्बल को मिले सहारा भी,
आपस में सब की राय मिले।
हम ऐसे दिन की यादों में अक्सर लांगुरिया गाते हैं,
श्रम की बाहों से जीते हैं, फ़सलों पर स्वेद लुटाते हैं।

जब सारी दुनियां सोती है,
हम फसल रखाया करते हैं।
हम बिना ताल सुनसानों में,
संगीत सुनाया करते हैं।
आराम हराम समझते हैं, वीरान बसाते जाते हैं,
श्रम की बाहों से जीते हैं, फ़सलों पर स्वेद लुटाते हैं।

आगया मधुमास, देखो!

फिर सृजन अपनी कहानी लिख रहा है,
फिर चमन में आगया मधुमास, देखो!

झर रहे हैं जीर्ण पत्ते,
कोंपलें सरसा रही हैं।
लालिमा हर फूल पर है,
गंध रस बरसा रही है।
फिर किरण अंधियार को नहला रही है,
फिर हृदय में आगया विश्वास, देखो!

शीतल की ऋतु जारही है,
मस्त फागुन आरहा है।
हर श्रमिक उल्लास में है,
गुनगुनाता जारहा है।
फिर कृषक फसलें रखाने जारहा है,
तन-बदन में आगया उल्लास, देखो!

आगया मधुमास, देखो!

सब तरफ़ हरियालियाँ हैं,
पांखुरी पर लालियाँ हैं ।
चन्द्रमा देता सुधारस,
महमहाती डालियाँ हैं ।
यह अधिक मन राग-रागें गा रहा है,
हो गया फिर स्वच्छ सा आकाश, देखो!

सान्ध्य-वेला

शाम का है वक्त सचमुच गीत गाने का,
या किसी सागर-किनारे दूर जाने का।

शाम का है वक्त सचमुच सोचने का,
उम्र अपनी और कितनी शेष है।
किस तरह हम जी रहे हैं आजकल,
और अब भवितव्य का क्या वेष है।
शाम का है वक्त मन में मन लगाने का,
पाँव लहरों में भिगोकर मुस्कराने का।

सान्ध्य-वेला

शाम का है वक्त, सूरज डूबता है;
किरण दिन की जारही है गाँव अपने ।
उड़ रही गोधूलि, गायें रंभाती हैं,
श्याम राका रख रही है पाँव अपने ।
शाम का है वक्त खोये गम भुलाने का,
या किसी सागर-किनारे दूर जाने का ।

शाम का है वक्त, वेदों के कथन में,
ध्यान प्रभु के चरण-कमलों में लगाना ।
इस जगत के छल-प्रपंचों से परे हो,
प्रेम के दो अश्रु चरणों में गिराना ।
शाम का है वक्त चिन्तायें जलाने का,
या किसी सागर-किनारे दूर जाने का ।

———

यह वेला निर्माण की

यह वेला निर्माण की,
यह वेला श्रमदान की।

सींचो अपने बाग को,
जोतो अपने खेत को,
करो पसीने का जादू,
कञ्चन कर दो रेत को।
क्या चिन्ता पवमान की,
यह वेला निर्माण की।

हरी-भरी हर क्यारी हो,
गंधायित फुलवारी हो,
अंकुर नये पनपते हों,
हंसिया और कुदाली हो।
आज हमें रक्षा करनी है।
बापू के अरमान की।

यह वेला निर्माण की

हम मिट्टी के पूत हैं,
मिट्टी पर बलि जायेंगे,
तुंग शृंग के सामने,
माथा नहीं झुकायेंगे ।
मरु में गंगा लायेंगे,
कमर तोड़ वीरान की ।

दास मत बनो मौसम के,
नई फसल लहरायेगी,
चना खिलखिला जायेगा,
बाली गीत सुनायेगी ।
आज परीक्षा का दिन आया,
यौवन और किसान की ।

अधिक अन्न उपजाने से,
बेकारी मिट जायेगी,
पनघट पर हलधर-बाला,
सर्जन गीत सुनायेगी ।
हरी-भरी तस्वीर बनाना है,

जियो और जीने दो का,
मिल कोरस गाना चाहिए;
पतझर को सन्यास दिलाकर,
मधुऋतु लाना चाहिए।
नई आरती गायी जाये
खेतों की, खलिहान की।

बोझ उतारेंगे सिर से,
माटी के एहसान का ;
बहा पसीना कर्म करेंगे,
बल हमको भगवान का।
हमसे आकर आँख मिलाये,
क्या ताकत तूफ़ान की।

निराला के प्रति

ओ जीवन के गायक, तुमने छन्दों में जादू भर डाला;
नये फूल गंधायित होंगे, नई सुबह आभारी होगी।

तुम भाषा को अमर कर गये,
अपने अक्षय ज्ञान-दान से।
अब ऐसा कवि नहीं मिलेगा—
कह सकता हूं मैं गुमान से।
जीते-जी जिसके दुःख-दर्दों पर हमने आंखें न गड़ाईं,
उसी सुमन की पांखुरियों से उपवन में उजयारी होगी।

उसकी रामभक्ति की पूजा,
'तुलसीदास' काव्य की रचना ।
अमर लिखी कविता की साड़ी—
कभी नहीं होगी निर्वसना ।
पीता गया हलाहल, लेकिन सुधा लुटाता गया साथ में,
सूरज अस्ताचल में डूबे, निश्चित ही अंधियारी होगी।

वह विराट व्यक्तित्व तुम्हारा,
गंगाजल में डूब गया है ।
लेकिन वह व्यक्तित्व अमर है—
जो संकट से जूझ गया है ।
श्रद्धांजलि स्वीकारो मेरी, हे युग-युग के अमर निराला,
इन अपशकुनी व्यवहारों से हर रचना दुखयारी होगी

निर्माणों का गीत

चलो हर चमन में बहारें बुलायें,
नई जिन्दगी के नये गीत गायें।

सृजन चाहिये शून्य वीरान पथ में,
सभी कारवां मंजिलें पा सकेगा।
तभी कोयलें बाग में गा सकेंगी,
कृषक फागुनी गीत भी गा सकेगा।
चलो हर चमन में झरे को खिलायें,
नई जिन्दगी के नये गीत गायें।

विजय-ध्वनि

सितारे हमें दे रहे हैं उजाला,
किरण चांद की चेतना दे रही है।
जलद पाठ सिखायें सेवा का देने,
स्वयं चञ्चला भावना दे रही है।
हवा की लहर से फ़सल को झुमायें,
नई जिन्दगी के नये गीत गायें।

हमारे सभी स्वप्न साकार होंगे,
हमें विश्व परिवार जैसा लगेगा।
पसीना हमारा खजाना बनेगा,
तभी प्यार का भाव मन में जगेगा।
सृजन के उदासे दृगों को हंसायें,
नई जिन्दगी के नये गीत गायें।

———

मैं मुसाफ़िर हूँ

मैं मुसाफिर हूँ कंटीले रास्तों का,
इसलिये मधुवन निर्वासन कर रहा हूँ।

तृप्ति मेरी प्यास में अनुभव करती,
क्योंकि मेरी प्यास पानी की नहीं है।
आंसुओं की बूंद में इतनी मगनता,
एक भी मुस्कान गाती की नहीं है।
रूप से मैं मन के घर आरहा हूं,
इसलिये यौवन निर्वासन कर रहा हूं।

आजकल इतना अंधेरा बढ़ गया है,
रोशनी के पंख व्याकुल छटपटाते।
नीड़ पर अधिकार बिजली ने किया है,
और हम सब चांदनी के गीत गाते।
आग में तपकर निखरना चाहता हूं,
इसलिये कञ्चन शिकायत कर रहा है।

मैं समय के सूर्य की बागी किरण हूं,
जब उतरती हूं अंधेरा छान देती।
बाट ताकते जिस नयन में प्यास बाकी,
मैं उसे धीरज बंधा मुस्कान देती।
इन दिनों प्रतिबिम्ब छल पाता नहीं है,
इसलिये दर्पण शिकायत कर रहा है।

भगीरथ गंगा लायेगा

जो रोज धूप में तपता है,
जो दीन नीर से काँपता है,
है मेरा विश्वास भगीरथ गंगा लायेगा ।

जिसको विश्राम नहीं भाता,
जिसका कि पसीने से नाता,
जो कठिन तपस्या के बल पर,
गेहूँ की बालें लहराता ;
जिसका जीवन है एक दौड़,
जो नहीं देखता राह-मोड़,
जो कोलाहल से दूर-दूर,
रामायण की धुन पर गाता;
जो अविरल गति से चलता है,
फसलों के संग-संग खिलता है,
है मेरा विश्वास बाढ़ से मोती पायेगा ।

जिसके हाथों में था कुदाल
बंजर को उर्वर करता है,
जिसके श्रम पर न्योछावर हो
मरुथल में निर्झर गिरता है;
जो वीरानों को चमन बनाने का
ध्रुव सा संकल्प लिये,
धानी फ़सलें लहराती हैं,
वह पाँव जिस तरफ धरता है।
जो सेवा से मेवा पाता,
जो बाधाओं से टकराता,
है मेरा विश्वास सृजन के गीत सुनायेगा।

———

उद्बोधन गीत

झरे को खिलाते हुए चल रहे हैं,
    नया पथ बनाते हुए चल रहे है।

समय के स्वरों में नया गीत गाते,
सृजन की अनूठी कहानी सुनाते,
वीरान राहों में हरियालियां ला,
पसीना बहाकर श्रमिक मुस्कराते।
    नया गीत गाते हुए चल रहे हैं,
    सुबह को बुलाते हुए चल रहे हैं।

विजय-ध्वनि

पसीना अभी धूल में बो रहे हैं,
फ़सल जो उठेगी नये प्राण पाकर।
स्वयं मंज़िलें ढूँढने चल पड़ेंगे,
चरण तो रखो राह में तुम उठाकर।
गिरे को उठाते हुए चल रहे हैं,
जलन को मिटाते हुए चल रहे हैं।

अंधेरा मिटाकर किरण छन रही है,
सृजन का अरुण हास छाया गगन में।
निराशा के कांटे पनपने न पायें,
सभी फूल ऐसे खिले हैं चमन में।
फ़सल को झुमाते हुए चल रहे हैं,
उदासी भुलाते हुए चल रहे हैं।

युग-गायक से

गीत गायक गा; मगर निर्माण पर कुछ गा।

गा कि मंजिल पास आती जारही,
चेतना निज पथ बनाती जारही।
आदमी के हृदय में ऐसी लगन,
मरुस्थलों में नीर लाती जारही।
गीत गायक गा; मगर वरदान पर कुछ गा।

गा कि फसलें लहलहाती हों,
गा कि कोयल गीत गाती हो।
हर बगीचे में सुरभि का वास हो,
गा कि खुशियां पास आती हों।
गीत गायक गा; मगर बलिदान पर कुछ गा।

दिशा में फैला हुआ सिन्दूर हो,
श्रम सृजन का वास्तविक दस्तूर हो।
कोई भी बिन कर्म के खाये नहीं,
देश फिर धन-धान्य से भरपूर हो।
गीत गायक गा; मगर बलिदान पर कुछ गा।

प्रणाम नहीं करता

जो अपनी राहें आप नहीं गढ़ता,
मेरा मन उसे प्रणाम नहीं करता।

•

केसरिया सूरज दिन भर जलता है,
उसने तुमसे प्रतिदान नहीं मांगा।
दीपक ने तम को छिन्न-भिन्न करके,
गुल खोकर भी सम्मान नहीं मांगा।
जो मृग-तृष्णा में खो जाता, गिरता,

घातों को चूम लहरें भाग रहीं,
लेकिन सागर से मुक्ति नहीं मांगी।
नैया डगमगा रही तूफानों में,
तट से रक्षा की युक्ति नहीं मांगी।
जिसका विश्वास सहारे को फिरता,
यह यौवन उसे प्रणाम नहीं करता।

उस ढीठ पपीहे के प्रण को देखो,
जो स्वाति नक्षत्र के जल से जीता है।
जीवन नियमों से और निखरता है,
संघर्ष उमर की पहली गीता है।
प्रतिमा के भीतर बैठ गई जड़ता,
यह त्रिभुवन उसे प्रणाम नहीं करता।

व्यर्थ नहीं जाती कोई आराधना

व्यर्थ नहीं जाती मन की प्रस्तावना,
अगर कथानक में जीवन हो, सांस हो।

अगर गीत में पीड़ा तो प्राण है,
नई सुबह के लिये त्वरित आह्वान है।
सुलझाने को अंधियारा है जाल-सा,
फिर भी जादूगरनी सी है लालसा।
व्यर्थ नहीं जाती भक्तों की भावना,
अगर इष्ट के दर्शन की अभिलाष हो।

मरुथल में भटकाने वाला मौन है,
कोलाहल में गाने वाला कौन है?
लेकिन इसका पता लगाना है मुश्किल,
आंसूवाले दृग से बहता है काजल।
व्यर्थ नहीं जाती चातक की साधना,
अगर मेघ में लगन, हृदय विश्वास हो।

शबनम किरणों का उजियाला पी गई,
ऐसा समझो दूना जीवन जी गई।
बगिया रोई कुछ पत्तों की याद में,
फूल मगर बेहोश पड़े उन्माद में।
व्यर्थ नहीं जाती माली की कामना,
अगर फूल में गंध, खुली वातास हो।

आहों का अम्बार भटककर व्योम में,
दाग बन गया गोरे-उजले सोम में।
राही को कितना समझाया धूप ने,
रेशम की जञ्जीर पिन्हा दी रूप ने।
व्यर्थ नहीं जाती कोई आराधना,
अगर तृप्ति के तट पर बैठी प्यास हो।

बांध के पानी नहीं हैं

रास्ता मंजिल हमारी, आस्था है घन हमारा;
धार है गंगो-जमुन की, बांध के पानी नहीं हैं।

एक सूरज हाथ में है,
दूसरा आकाश में है।
नाम पढ़ना है हमारा,
सृजन के इतिहास में है।
प्यास है हलचल हमारी, तुम इसे पहचानते हो;
हम विजय की भूमिका हैं, स्वर्ण के दानी नहीं हैं।

विजय-ध्वनि

हम पसीना दे रहे हैं,
तुम इमारत पर खड़े हो।
मौन विज्ञापन हमारा,
इसलिये हमसे बड़े हो।
हम अभी संकोच में हैं, सुख-दुखों के सोच में हैं;
अभी तुमने आग की तस्वीर पहचानी नहीं है।

हम समय के सारथी हैं,
दोपहर की आरती हैं।
शान्ति है आसन हमारी,
न्याय के पथ पर यती हैं।
जिन्दगी संघर्ष भी, उत्कर्ष भी, अपकर्ष भी है,
सुखों के घर चार दिन की सिर्फ मेहमानी नहीं है।

नई रोशनी

नयी मंजिलें हैं, नये कारवां हैं,
सुबह हो गई है, चले जारहे हैं।

अंधेरा गगन से विदा ले चुका है,
उदासी छिपी; चेतना की किरन है।
विहग गारहे आसमानी प्रभाती,
हरी हैं लतायें, सुगन्धित पवन है।
खुली धूप में खिलखिलाते सुमनदल,
मगर हाथ बांटे चले जारहे हैं।

विजय-ध्वनि

सृजन हो रहा है डगर से शहर तक,
स्वयं हर नदी बांध बंधवा रही है।
स्वयं बिजलियां चाहती हैं चमकना,
तरो शीप धारों का झुकवा रही है।
श्रमिक के नयन में नई रोशनी है,
प्रमादी बटोही छले जारहे हैं।

उदासे नहीं हैं किसानों के लड़के,
उन्हे ज्ञान का सूर्य किरणें लुटाता।
कहीं भी निराशा पनपने न पाती,
श्रमिक का हुआ है पसीने से नाता।
नई हर उमर की नयी पाठशाला,
गुलाबों से चेहरे खिले जारहे हैं।

उदासी में न बीते

मांगते हैं तीर्थ जीवन से पसीना,
सृजन का मौसम उदासी में न बीते।

हाथ में हँसिया लिये वह श्रम-पुजारिन,
नित सवेरे से फसल को काटती है।
रात ने अंधकार जो फैला दिया था,
देख सूरज की किरण तम छांटती है।
मांगती है जिन्दगी मधुमास नूतन,
सृजन का मौसम उदासी में न बीते।

हाथ में डलिया सुमन की लिये मालिन,
बाग के सब फूल-अंकुर सींचती है।
देखकर हरियल पनपती पौधमाला,
बाग में मधुऋतु बुलाकर रीझती है।
मांगता है श्रम, सृजन, साहस तुम्हारा,
किरण का मौसम उदासी में न बीते।

शाम तक मजदूर की जीवन-सहेली,
रुई को धुनती हुई मुस्का रही है।
सृजन का उल्लास चेहरे पर खड़ा है,
गीत जाने कौन कवि का गा रही है।
मांगता है देश धरती से नगीने,
चयन का मौसम उदासी में न बीते।

———

मैं चलता हूं

मैं चलता हूं, जिस ओर बहारें चलती हैं,
मैं नौजवान खुद अपनी राह बनाता हूं।

मैं पांव हिमालय के सिर पर भी रख आया,
मैं सिन्धुतीर के पानी पर लहराया।
मेरे हाथों से तलवारें डोली हैं,
भगवानों से अपनी बातें होती हैं।
मैं बढ़ता, मेरे साथ समय भी बढ़ता है;
मैं युगों को जीवन का अर्थ बताता हूं।

मेरी गति पर पवमान निछावर होता है,
सारे जग का सम्मान निछावर होता है।
मैंने खेतों में हरे धान लहराये हैं,
दुर्गम शिखरों पर विजयकेतु फहराये हैं।
इतना ज्ञानी, मैंने पढ़ डाले चार वेद;
मैं मरुथल को मधुबन की तरह खिलाता हूँ

मेरे पांवों में बाधाओं के पड़े व्याल,
मुझको हल करना होगा मंजिल का सवाल।
धरती की सूनी आंखें मुझको ताक रहीं,
मानो मेरे भविष्य की कीमत आंक रही।
मुझको धरती का पूरा कर्ज चुकाना है,
इसलिये सृजन के मीठे गीत सुनाता हूँ

———

आदमी त्यागी नहीं है

आंख में आंसू नहीं है, मूक गंगाजल करे क्या,
विवशतायें बढ़ गई हैं, आदमी त्यागी नहीं है।

त्याग का आशीष कंगाली नहीं है,
त्याग गौतम बुद्ध ने सचमुच किया था।
पर अभावों को सुनहरा नाम मत दो,
विष कभी भगवान शंकर ने पिया था।
पीर में डूबा हुआ है, आदमी ऊबा हुआ है;
भूख अपराधी हुई है, आदमी दागी नहीं है।

है गुलाबी बाग के सपने अधूरे,
जब जुही का कंठ प्यासा मर रहा है।
स्वयं कोयल का कुहुकना पतझर में,
जब स्वयं मधुमास घायल फिर रहा है।
चमक चेहरे पर नहीं है, पराजित सपने उमर के;
लालसायें चीखती हैं, आदमी बागी नहीं है।

कल्पना के नाम पर कब तक जियेंगे,
सत्यता की लाज महलों में सिसकती।
और हम सब रेशमी जंजीर में हैं,
जिन्दगी विधवा बहारों सी तरसती।
बेवजह चुपचाप हैं हम, पीढ़ियों के श्राप हैं ह
रूप पर सौ-सौ नियंत्रण, प्राण अनुरागी नहीं

आज मेरे गीत चेतनता भरेंगे,
भूख हाहाकार को मैं कंठ दूंगा।
ुष्क, निष्क्रिय देह में उत्साह भरकर,
ुख के त्यौहार को मैं कंठ दूंगा।
जागने का समय आया, जगाने का समय आया
मिटेंगे दुख-दर्द सारे; बगावत जागी नहीं है

* समाप्त *

विजय-ध्वनि

सम्मतियां

मैंने श्री नरेन्द्र 'चञ्चल' का 'विजय-ध्वनि' नामक कविता-संग्रह सुना है। संग्रह की अधिकांश कविताएं आक्रान्ता चीन का उसके विश्वासघाती व्यवहार के सम्बन्ध में चेतावनी देती है तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सशक्त रूप प्रस्तुत करती हैं। श्री चञ्चल में भावगाम्भीर्य और विचारों के अभिव्यक्त करने की क्षमता है। कविताएं प्रेरक, उत्साहवर्द्धक एवम् उत्तेजक हैं। श्री चञ्चल राष्ट्र में देशभक्ति की भावना को सबल बनाने में सफल होंगे। श्री चञ्चल उत्तरोत्तर सफल होते रहे हैं, मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।